**ओ३म्**

**‘मैं ब्रह्म नहीं अपितु एक जीवात्मा हूं**।**’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

मैं कौन हूं? यह प्रश्न कभी न कभी हम सबके जीवन में उत्पन्न होता है। कुछ उत्तर न सूझने के कारण व अन्य विषयों में मन के व्यस्त हो जाने के कारण हम इसकी उपेक्षा कर विस्मृत कर देते हैं। हमें विद्यालयों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, उसमें भी यह विषय व इससे सम्बन्धित ज्ञान सम्मिलित नहीं है। इसका कारण यह है कि जिन लोगों के धर्मग्रन्थों में इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर नहीं है वह इसके अध्ययन को साम्प्रदायिकता कह कर विरोध शुरू कर देते हैं। अतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न होने पर भी यह अधिकांश के लिये सारा जीवन विस्मृत, उपेक्षित व अनुत्तरीय ही बना रहता है। अद्वैतवाद के मानने लोग यदा-कदा यह भ्रम फैलाते रहते हैं कि जीवात्मा ब्रह्म अर्थात् ईश्वर का अंश वा साक्षात् ब्रह्म ही है। उनरके अनुसार इस सारे संसार में केवल एक ही सत्ता है और वह ईश्वर है। हमें आंखों से जो संसार दिखाई देता है, वह स्वप्नवत् है, यथार्थ नहीं है। उनके अनुसार आंखों से दीखने व अनुभव होने वाले संसार का अस्तित्व ही नहीं है। जीवात्मा को जब ज्ञान हो जायेगा तो वह ईश्वर में मिल जायेगा अर्थात् उसका अस्तित्व ईश्वर में विलीन होकर वह ईश्वर हो जायेगा। यह बात कहने में तो अच्छी दिखाई दे सकती है परन्तु यह सत्य नहीं है। हम निभ्र्रान्त रूप से अनुभव करते हैं कि हम एक चेतन सत्ता है। हमें सुख व दुःख की अनुभूति होती है। जिसे सुख व दुःख की अनुभूति होती है वह चेतन सत्ता होती है। इस प्रकार से संसार में पशु, पक्षी, कीट व पतंग आदि नाना प्रकार के सभी प्राणी एक चेतन तत्व **‘जीवात्मा’** से संबद्ध हैं। जब तक जीवात्मा उन उन प्राणियों के शरीरों में होती है, तब तक वह जीवित रहकर अपने अपने कर्म करते हैं, जीवात्मा के पृथक होने पर उनकी मृत्यु हो जाती है और उनके शरीर कारण तत्व अर्थात् पंच तत्वों में विलीन हो जाते हैं।

चेतन व जड़ दो प्रकार के पदार्थ हमें संसार में दिखाई देते हैं। भौतिक पदार्थ मूल तत्व प्रकृति के विकार हैं। यह भौतिक पदार्थ चेतन न होकर जड़ हैं। जड़ पदार्थों को सुख व दुःख तथा अच्छा व बुरे की प्रतीती नहीं होती। न्याय दर्शन के अनुसार आठ प्रमाणों से परीक्षा करने पर प्रकृति चेतन तत्व से पृथक एक जड़ तत्व निश्चित व सिद्ध होता है। हम भौतिक पदार्थों से निर्मित शरीर व जीवात्मा का संयुक्त संगठित रूप हैं। शरीर में आंख, नाक, कान आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां तथा अन्तःकरण में मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार अवयव हैं जो अपना अपना कार्य करते हैं। शरीर में नाना प्रकार के अन्य महत्वपूर्ण अनेक अवयव हैं जो ईश्वरीय सत्ता से संचालित होकर अपने-अपने कार्य को स्वतन्त्रता पूर्वक करते हैं। यह सभी हमारे भौतिक जड़ शरीर के अंग व अवयव हैं। हमारे इस शरीर में ही एक चेतन तत्व जीवात्मा है जो मन को प्रेरित कर इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान व सुख-दुःख की अनुभूतियों को ग्रहण करता है। आंखों से अच्छे दृश्य भी देखे जाते हैं व बुरे भी तथा कान से विद्या व ज्ञान से सम्बन्धित पवित्र शब्द भी सुने जाते हैं और मन को विकारयुक्त करने वाले बुरे शब्द भी। इसी प्रकार से अन्य तीन इन्द्रियों से भी अच्छे व बुरे ज्ञान व अनुभूतियों को ग्रहण किया जाता है। जो मनुष्य अपने माता-पिता व आचार्य के द्वारा अथवा सद्ग्रन्थों के द्वारा यह निश्चय कर लेता है कि कभी कोई बुरा कार्य नहीं करना है तो वह उन्नति को प्राप्त होता है और जो बुरे कार्यों को करता है, वह अवनति को प्राप्त करता है। मनुष्य छुप कर बुरे कार्यों को करता है और सोचता है कि मुझे किसी ने नहीं देखा, अतः मुझे दण्ड नहीं मिलेगा परन्तु यह उसकी अज्ञानता व भूल होती है। वह सांसारिक लोगों से भले ही अपने बुरे कार्यों व पापों को छुपा ले, परन्तु इस संसार को बनाने व चलाने वाली तथा जीवात्माओं को शरीरों से संयुक्त करने वाली वा जन्म देने वाली सत्ता सर्वान्तर्यामी होने के कारण हर क्षण हमारे समस्त कर्मों को जानती व देखती है। हमारे मन की सभी भावनायें भी उस सर्वान्तर्यामी सत्ता से छुपी वा अविदित नहीं रहतीं। यह सर्वान्तयामी सत्ता ईश्वर कर्मफल दाता शक्ति भी है जो यथासमय जन्म-जन्मान्तर में हमें हमारे अच्छे व बुरे कर्मों का न्यायोचित व निष्पक्ष रूप से यथायोग्य जीव-जन्म-योनि व सुख-दुःख रूप में फल देती है। अतः दुःखों से बचने के लिए जीवात्मा व मनुष्य को एकान्त में भी कोई बुरा विचार व कार्य नहीं करना चाहिये। यदि कोई सुख व उन्नति करना चाहता है तो उसे अपने अन्दर व बाहर से बुरे विचारों से दूर हटा कर ईश्वर का अर्थ ज्ञान सहित नाम स्मरण व वैदिक कर्मों के अनुरूप विद्या व ज्ञान से पूर्ण कर्मों को ही करना चाहिये।

हमने जड़ व चेतन तत्वों के अन्तर्गत जीवात्मा व प्रकृति की चर्चा की। अब प्रकृति को रूपान्तरित कर इस सृष्टि को बनाने वाली सत्ता तथा सभी प्राणियों को उनके पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर जन्म देने वाले ईश्वर की चर्चा कर लेना भी समीचीन होगा। हम संसार को आंखों से देखते हैं व अपनी सभी इन्द्रियों से इसकी सत्ता का साक्षात् अनुभव करते हैं। यह सत्ता स्वप्नवत् न होकर यथार्थ व सत्य है। सृष्टि में मुख्य रूप से सूर्य, चन्द्र व पृथिवी को लेते हैं। यह तीनों नक्षत्र, ग्रह व उपग्रह स्वयं अपने आप नहीं बने हैं। कोई भी बुद्धि पूर्वक रचना अपने आप कभी नहीं हुआ करती। हमारे घर में आटा, जल, तवा, इंधन व सभी पदार्थ रखे हों तो क्या कभी इनसे रोटी बन सकती है? कभी नहीं बन सकती। इसी प्रकार से सूक्ष्म प्रकृति से अपने आप सूर्य, चन्द्र आदि नाना प्रकार के उपयोगी व इच्छित पदार्थ स्वयं नहीं बन सकते। इनको बनाने वाला एक रचयिता अवश्य होना आवश्यक है। उस रचयिता को ही ईश्वर कहा जाता है। सृष्टि को बनाना ही उसका प्रथम मुख्य कार्य है। यह सृष्टि उसी के द्वारा बनाने से अस्तित्व में आई है। यदि वह न बनाता तो न बनती। उसने इसे अनायास बिना किसी उद्देश्य के नहीं बनाया? रचना का अवश्य कोई न कोई उद्देश्य होता है। सृष्टि रचना का उद्देश्य भी अवश्य है। विचार करने पर, वेदों व वैदिक साहित्य से यह निश्चित होता है कि जीवात्मों के सुख भोग के लिये ईश्वर द्वारा यह बनाई गई है। बिना सृष्टि व इसके पदार्थों के जीवात्माओं को सुख व दुःखों की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः सृष्टि बनाने का प्रयोजन जीवात्माओं को उनके पूर्व सृष्टि के पाप पुण्यों का फल प्रदान करने अर्थात् सुख व दुःख प्रदान करने के लिये ईश्वर ने सृष्टि को बनाया है। माता-पिता-आचार्य का कार्य भी अपने पुत्र-पुत्रियों व शिष्यों को अच्छी शिक्षा देना व सुख प्रदान करना ही होता है। माता-पिता को यह शिक्षा ईश्वर की प्रेरणा व वैदिक ज्ञान से ही प्राप्त होती है। जब अल्पज्ञ माता-पिता यह कार्य करते हैं तो ईश्वर जो असंख्य माता-पिताओं व आचार्यों का भी माता-पिता-आचार्य व सर्वज्ञ है, वह सामर्थ्य होने पर भी सृष्टि की रचना, पालन व जीवों के सुख के लिये व्यवस्था क्यों न करेगा? अतः यह स्पष्ट हो गया कि ईश्वर नाम की एक सत्ता है जिसने जीवों के सुख के लिए सृष्टि की रचना की है।

**यह ईश्वर कैसा है?** **युक्ति, तर्क, बुद्धि व वेद के प्रमाणों से यह सत्य, चेतन, आनन्द से पूर्ण, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अजर, अमर, अभय, सृष्टिकत्र्ता आदि स्वरूप वाला सिद्ध होता है।** सत्य का तात्पर्य उसकी सत्ता का होना है तथा चेतन का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। चेतन तत्व होने के कारण उसे सुख व दुःख का ज्ञान होना स्वभाविक है। उसका आनन्द से युक्त होना आवश्यक है अन्यथा वह कोई कार्य नहीं कर सकता। तर्क व विवेचन से यह ज्ञात होता है कि दुःख एकदेशी, अल्पज्ञ व परतन्त्र सत्ता को होता है। ईश्वर सर्वव्यापक है, सर्वत्र है व स्वतन्त्र है अतः उसे दुःख होने का प्रश्न ही नहीं है। दुःख का एक अन्य कारण व साधन शरीर होता है। ईश्वर मानव के समान शरीर वाला है ही नहीं, अतः उसे कोई दुःख नहीं होता। अन्य सर्वव्यापक, निराकार आदि सभी विशेषण भी ईश्वर में घटते हैं व तर्क से सत्य सिद्ध होते हैं। यही ईश्वर का सत्य स्वरूप है। अतः ईश्वर की सत्ता भी सत्य सिद्ध है। इस प्रकार से ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति की पृथक-पृथक सत्तायें सिद्ध होती है। ईश्वरीय ज्ञान वेदों में भी इसके प्रमाण पाये जाते हैं। ऋग्वेद के मन्त्र 1/164/20 में इन तीन स्वतन्त्र सत्ताओं का वर्णन है। मन्त्र है **‘द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तयनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।।’** इस ऋग्वेद मन्त्र में स्पष्टरूप से वृक्ष के रूप में प्रकृति का, पाप-पुण्यरूप फलों का भोग करनेवाले के रूप में जीव का और केवल साक्षीरूप में ईश्वर का कथन करके, ईश्वर, जीव तथा प्रकृति के नित्यत्व का प्रतिपादन किया है। यही मन्त्र मुण्डकोपनिषद् (3-1-1) तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् (4-6) में भी उद्धृत कर इन उपनिषदकारों ने वेदानुकूल इन तीनों तत्वों के अनादित्व का उल्लेख किया है। इससे त्रैतवाद का प्रतिपादन वेदानुकूल होने से सत्य व यथार्थ है।

जीवात्मा व जीव सत्य, अनादि, अनुत्पन्न, नित्य, अजर, अमर, एकदेशी, अल्पज्ञ, समीम व चेतन तत्व है। इन गुणों व कर्म-फलों के कारण ही ईश्वर के द्वारा इसका जन्म-मरण होता रहता है। जन्म-मरण की यह यात्रा मोक्ष पर पहुँच कर समाप्त होती है। मोक्ष के लिये धर्म, अर्थ व काम का अवलम्बन लेना होता है। वेद विहित कर्मों का नाम धर्म व वेद-निषिद्ध कर्मों का नाम अधर्म है। अधर्म से जीव कर्म-फल-बन्धन में फंसता है और धर्म से यह बन्धन ढीला व समाप्त होता है। जीवात्मा व मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल भोगने में ईश्वरीय व्यवस्था में पराधीन होता है। जन्म व मरण मनुष्य के अपने वश में नहीं है। माता-पिता भी यह अपनी इच्छा से नहीं चुन सकता। यह इसे इसके कर्मानुसार ईश्वर प्रदान करता है। हमने जड़ प्रकृति की चर्चा की है। यह अपनी मूल कारणावस्था में अत्यन्त सूक्ष्म व सत, रज व तम गुणों वाली होती है। इन तीन गुणों का संघात प्रकृति कहलाती है। ईश्वर इस प्रकृति से महतत्व बुद्धि, उससे अहंकार, उस से पांच तन्मात्रा, सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन की रचना करता है। पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये कुल चैबीस विकार व रचनायें और पच्चीसवां पुरूष अर्थात् जीव और छब्बीसवां परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्व, अहंकार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य, और इन्द्रियां मन तथा स्थूल भूतों का कारण हैं। पुरूष न किसी की प्रकृति, उपादान कारण और न किसी का कार्य है।

हम समझते हैं कि लेख के प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि मैं वा समस्त जीव ब्रह्म अर्थात् ईश्वर नहीं हैं अपितु ईश्वर से भिन्न व पृथक स्वतन्त्र एकदेशी चेतन सत्तायें हैं। वेदाध्ययन कर वेदाचरण से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हमारा उद्देश्य व लक्ष्य हैं। हम निवेदन करते हैं कि वेदों व सद्ज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्यार्थप्रकाश एक महत्ववपूर्ण धर्मग्रन्थ हैं। यह वेदों में प्रवेश की कुंजी है। सभी को इसका अध्ययन करना चाहिये। महान विद्वान पं. गुरूदत्त विद्यार्थी ने 130 पूर्व कहा था कि यदि सत्यार्थ प्रकाश का मूल्य एक हजार रूपये भी होता तो भी मैं अपनी समस्त सम्पत्ति बेचकर इस ग्रन्थ को खरीदता और इसे पढ़ता। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं। इत्योम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**